ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 113-116

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

लोककला परम्परा में मृण्कला

सारिका वर्मा

शोध अध्येत्री– फाईन आर्ट, निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर, (राजस्थान), भारत

Received- 17.02. 2022, Revised- 22.02 2022, Accepted - 26s.02.2022 E-mail: designersri8@gmail.com

सारांशः – *क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंच तत्व मिल बना शरीरा।। अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु सभी पॉचों तत्वों को मिलाकर शरीर की रचना हुई है। इनमें पृथ्वी प्रथम तत्व है तथा सभी तत्वों में सबसे अधिक स्थूल भी है। पृथ्वी में मूल पदार्थिक तत्व मृण अर्थात मिट्टी है और मिट्टी, इस सृष्टि के सभी जीवधारियों के लिए आवश्यक तत्व है। धरती के सतह पर कई पर्तो में यह एक ओर आधार का कार्य करती है तो दूसरी ओर इसकी उर्वरा शक्ति के कारण सभी प्राणियों, पेड़–पौधों का जीवन निर्भर करता है। इस कारण पृथ्वी को धरती मॉ की संज्ञा दी गई है यह कहा जा सकता है कि मिट्टी से मनुष्य का आदिम सम्बन्ध रहा है। क्योंकि उपयोगी तत्व के रूप में इसका प्रयोग रहने वाले पर और दैनिक उपयोग की सैकड़ों–हजारों वस्तुओं को बनाने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी का ही प्रयोग किया गया। मनुष्य के लोक जीवन का आधार भी मिट्टी रहा है क्योंकि सरलता से पानी के साथ इसको गूंथ कर हाथों द्वारा आकार देने में सुविधा होती है और गांवों में मिट्टी के दीवारों द्वारा घरों का निर्माण किया जाता रहा है। जो वर्तमान समय में भी दिखाई देता है। घरों में मिट्टी के खिलौनों व सरलीकृत मूर्ति शिल्पों का निर्माण किया जाता है। विभिन्न पर्वों, तीज–त्योहारों के अवसर पर आनुष्ठानिक कच्ची मिट्टी के अर्द्ध देवी–देवताओं के प्रतिमाओं का प्रचलन आदिकाल से रहा है इस प्रकार के रूपाकारों को हम सम्पूर्ण भारत में आज भी देख सकते हैं।*

कुंजीभूत शब्द– क्षिति, पावक, समीरा, स्थूल, पदार्थिक तत्व, सृष्टि, उर्वरा शक्ति, दैनिक उपयोग, आनुष्ठानिक।

मिट्टी से आकारों और आकृतियों के निर्माण करने की परम्परा बहुत प्राचीन समय से है। लोक जीवन में सामाजिक क्रिया–कलापों में मिट्टी का महत्व इस कारण भी है, क्योंकि साधारण लोग भी इसके द्वारा किसी भी प्रकार के रूपाकारों का निर्माण करने में सक्षम होते हैं। इस प्रारम्भिक माध्यम द्वारा विविध कलात्मक एवं आनुष्ठानिक रूपों और स्वरूपों का निर्माण किया जाता रहा है। उसे हम मिट्टी की कला कह सकते हैं जो लोगों के जीवन से सीधे रूप में जुड़ी रही है, जिसे हम सांस्कृतिक क्रिया–कलापों के साथ जोड़कर देखें तो यह निरन्तर प्रक्रिया के रूप में दिखाई देता है।

हम अपने जीवन के साथ मिट्टी के सम्बन्ध पर गहन चिन्तन–मनन करें, तो यह आभास होता है कि जिस प्रकार हमारा नष्वर षरीर जो पंच तत्वों से मिलकर बना है, मिट्टी में मिल जाता है, उसी प्रकार बिना पके हुए अर्थात् अपक्व आकारों एवं आकृतियों का जीवन भी अधिक समय तक नहीं बचे रह सकते और उनके आनुष्ठानिक क्रिया–कलापों के बाद नदी अथवा जल (तालाब, कुण्ड आदि) में प्रवाहित कर दिया जाता है। विश्वास के अनुसार जीवन की नश्वरता के साथ एक प्रकार से शिल्पियों की अपनी शाश्वत निरन्तरता भी है।

मिट्टी जहॉ–जहॉ है, वहॉ–वहॉ मिट्टी से निर्मित मिट्टी का ही एक अलग जगत भी है। मिट्टी और मानव के सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। पृथ्वी की निर्माण की अनेक उत्पत्ति कथाओं से यह स्पष्ट होता है कि आदि मानव का प्रादुर्भाव धरती के बन जाने के बाद अनुकूल परिस्थितियों में हुआ। जब से मिट्टी और मनुष्य के सम्बन्ध गहरे होते चले गये। कहते हैं– मनुष्य माटी का पुतला है। ब्रह्मा ने मनुष्य को जिन तत्वों से गढ़ा, वे मिट्टी से ही प्राप्त हुए थे। सारी प्रकृति मिट्टी के आधार पर खड़ी है। सारा चराचर मिट्टी पर आश्रित है। जड़–चेतन, पेड़–पौधे, खनिज आदि मिट्टी के गर्भ से उत्पन्न है।[1]

मिट्टी की प्रतिमाएं अत्यन्त प्राचीन काल से निर्मित होती रही है। सिंधु घाटी सभ्यता में मोहनजोदड़ों से प्राप्त होने वाली आकृतियों में मनुष्यों, स्त्रियों और पशुओं की आकृतियॉ हैं। इस प्रकार भारत की प्राचीन सभ्यता संस्कृति में मिट्टी के विभिन्न वस्तुओं का महत्व रहा है।

शिल्परत्न में उल्लेख के अनुसार बिना पकी हुई मूर्तियों को अपक्व अथवा आममार्तिक कहा गया है। मूर्तियों को बनाने के लिए मिट्टी में विभिन्न पदार्थों को मिला कर उन्हें न टूटने वाली बनाने का प्रयास किया जाता रहा है मिट्टी का सूक्ष्म कणों के रूप में कूट–पीस कर उसमें जौ, गेहूँ या उड़द तथा गुग्गुल का चूर्ण मिलाया जाता है और बाद में किसी वृक्ष के रस को मिलाकर उसे गीला किया जाता रहा है फिर उसमें तेल और गाय का पंचगव्य मिलाया जाता है और उपयोगी मिट्टी तैयार होने पर प्रतिमाओं का निर्माण करके उन्हें सुखाया जाता है। इस प्रकार निर्मित अपक्व खिलौने और मूतियॉ साधारण मिट्टी से बनी मूर्तियों व खिलौनों से अधिक समय तक टिकाऊ होती है। ''हरिभक्तिविलास'' ग्रन्थ में भी इसी प्रकार के मिश्रण द्वारा मिट्टी के वस्तुओं को बनाने का उधृत विवरण के अनुसार प्रचलन में रहा है।[2]

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

मृण्मूर्तियों के रूपाकारों में पशुओं, मानव और देवी–देवताओं की मिट्टी की आकृतियों एवं प्रतिमाओं का निर्माण विशेष अवसर पर किया जाता है, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि बिना पके हुए मिट्टी के इन रूपकारों में जीवन का स्पन्दन होता है और अनुष्ठानिक क्रिया–कलापों के बाद इन्हें नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। इस प्रकार के अनेक विचारों को भारतीय परम्परा में देखा जा सकता है।

भारत, उत्सवों व पर्वों का देश है, कण–कण में यहॉ भगवान का वास होता है इसलिए प्रकृति की हर वस्तु पूज्य है। हस्तशिल्प, हस्तकलाओं का आधार सदा ही लोक कलाएं ही रही है।

भारत के प्रत्येक क्षेत्र में मृण्कला परम्पराएं युगों से चलती रही है और प्रत्येक क्षेत्र में इस कला विधा का अपना क्षेत्रीय प्रभाव रहा है। सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर दक्षिण के अन्तिम समुद्री छोर तक पूर्व से लेकर पष्चिम तक सम्पूर्ण भारतीय भू–भाग पर मिट्टी के सृजनात्मक क्रिया–कलाप होते रहे हैं।

भारत में मिट्टी शिल्प की अत्यन्त विविधतापूर्ण और समृद्ध परम्परा रही है। मृण्कला विशेष रूप से सर्वत्र देखी जा सकती है। अनुष्ठान की दृष्टि से और रूपाकारों की दृष्टि से दोनों का अन्तःसूत्र एक ही शुद्ध भारतीय है। मध्य प्रदेश, राजस्थान जैसे प्रदेशों में अनुष्ठान के लिए पक्व तथा अपक्वशिल्पों का निर्माण किया जाता रहा है। यह कहा जा सकता है कि भारत में कुम्हारों के द्वारा ही मिट्टी के खिलौने, शिल्प आदि बनाए जाते रहे हैं, बल्कि महिलाएं भी घर में मिट्टी द्वारा सरलीकृत रूप में श्री गणेश आदि की प्रतिमाओं को बनाने में सिद्धहस्त रही हैं।

किसी भी कला का सौन्दर्य बोध समझने के लिए देशकाल का ज्ञान होना आवश्यक हैं क्योंकि तब ऊपरी सतही सौन्दर्य को ही न देखकर आन्तरिक सौन्दर्य का बोध किया जा सकता है।[3]

मृण्कला एवं शिल्प का क्षेत्र और व्यापकता सम्पूर्ण भारत वर्ष तथा उसके घटक–अंचल है जो अपनी भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाशायी विविधताओं के आधार पर अपनी विशिष्टता रखते हैं। लोक मंगल के ये अनुष्ठान सामूहिकता में ही दोनो सम्पादित होते हैं इस कारण भारत के सभी क्षेत्रों का सर्वेक्षणात्मक विवेचन आवश्यक है। विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों तथा उनके परिवेश, आचार–विचार, विश्वास, रीति–रिवाज, परम्पराएं तथा उनकी अभिव्यक्ति अपनी विशेषता रखती है। सभी क्षेत्रों के इस प्रकार के कलात्मक आनुष्ठानिक मृण्कला को भारत के छोटे–छोटे क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पहचान के रूप में देखा जा सकता है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में शहरों, कस्बों और गॉवों में विशेष रूप से मिट्टी की शिल्पों का अलग ढ़ग से निर्माण होता रहा है। कच्ची मिट्टी की मूर्तियों के पूजा का एक विधान है जो कि पूजा के बाद विसर्जित कर दी जाती है। मृण्कला का क्षेत्र विभाजन करने के लिए भारत के अनेक स्थलों से प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर विभिन्न कालों में क्षेत्रीय मृण्कला के विधियों, पद्धतियों, तकनीक एवं उनके विषय वस्तु की विशेषताओं की परख करना आवश्यक है। ग्रामीण आदिवासी और शहरी क्षेत्रों के ब्रत, तीज, त्योहारों, उत्सवों पर बनने वाले आनुष्ठानिक मृण्कला की विशेषताओं के आधार पर यह ज्ञात हो सकता है कि मिट्टी की कला का प्रावधान किसलिए किया जाता है।

मिट्टी की मूर्तियॉ सरगुजा की महिलाओं द्वारा बनाया जाता है। मूर्तियों की संरचना निर्माण के लिए पहले बॉस लगाकर उसपर पुआल बॉधते हैं फिर उस पर मिट्टी को लगाया जाता है। मूर्तियॉ जब सूख जाती है तो उन पर सादे मिट्टी के रंग कपड़े के टुकड़े से लगाये जाते हैं। देशज रंगों में गेरू, काली मिट्टी एवं पीली मिट्टी गॉव में उपलब्ध हो जाती है। कच्ची मिट्टी से बनी मूर्तियों का आकार और रूप सौन्दर्य उनके जातीय गुणों के आधार पर विकसित होता रहा है। कलाकारों की अपनी मौलिकता होती है। कुछ कलाकार बड़ी मूर्तियों का निर्माण करते हैं। यह देखा जाता है कि प्रत्येक कलाकार द्वारा निर्मित मूर्तियों में हाथ की शिल्पकारिता का अपने एक अलग महत्व होता है। यह कहा जा सकता है कि उनमें मौलिकता और सहजता दिखायी देती है, जिस कारण कुछ शिल्पियों के आकारों में अनगढ़ता दिखाई देती है। ये शिल्प कच्ची मिट्टी के बने होते हैं इस कारण उनकी बिक्री बहुत कम होती है लेकिन इनकी कलाकृतियों में अपनी जातीय स्मृति चेतना का आभास तो होता है, जिनका अपना सौन्दर्य बोध होता है। ''अनजाने में अबोध कलाकार हमारी पुरा–ऐतिहासिक सौन्दर्य बोध की छवियों को अक्षुण्य रखे हुए हैं, इस बात को समझ लेने के बाद इन कलाकारों की महत्ता आज के समय में अपने आप समझ में आ जाती है। इसी सरगुजा क्षेत्र के चिलबिल नाम के गॉव में महिला कलाकारों द्वारा कच्ची मिट्टी के बड़े आकार की मिथकीय मूर्तियां और पशु–पक्षी, कीड़ें–मकोड़ों के शिल्प बनाने की परम्परा है। इनमें श्रीमती नानकेली बाई, शंकर और बन्दर की मूर्ति, तुलसीबाई रावार की नचकारिन मीरा, दही खाते हुए श्री कृष्ण, सर्प बजाते हुए फनधारी सर्प, बारहसिंगा, हाथी, मोहरी बजाता सर्प, गांजा पीते हुए सर्प, सर्पों की इस प्रकार की कल्पनातीत मूर्तियों को देखकर आश्चर्य होता है। पता नहीं सर्प सरगुजा की महिलाओं की स्मृति में इतने विविध मानवीय रूपों किस लिए बैठा है?

विचारणीय है महिलाओं द्वारा घोड़ा, हाथी, शिवशंकर की मूर्तियों के आकार प्रायः आदिम मिथकों के आधार पर बनाये

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

जाते हैं। यह देखा जाता है कि प्रत्येक मूर्ति की अपनी अलग लय है, स्वायत्तता है, गाथा है, रंग है, आकार है। यह माना जा सकता है कि इसके पीछे कलाकारों का ज्ञान अनुभूति व परम्परा का संचित कोष ही काम करता है।[4]

मृण्कला का व्यापक रूप में अध्ययन व शोध विद्वानों ने किया किन्तु अपक्व मृण्कला का अध्ययन विद्वानों ने समुचित रूप में जानबूझकर नहीं किया या इसकी दुर्बभता और अस्थायित्व प्रकृति के कारण इसे शोध के लिए अनुपयुक्त माना गया। अपक्व मृण्कला का मुख्य उद्देश्य यही है कि कलात्मक गुणवत्ता से युक्त इस कला के सभी पक्षों और आयामों को दृष्टिगत रखते हुए व्यापक अध्ययन करें। मृण्कला के बारे में ऐतिहासिक सन्दर्भों के आधार पर विभिन्न कालों में मिट्टी के सृजनात्मक पक्ष को आनुष्ठानिक क्रिया–कलापों के अन्तर्गत कच्ची मिट्टी के खिलौनों एवं मूर्ति–शिल्पों की विभिन्न क्षेत्रों में महत्ता को सिद्ध करने के लिए गहन अध्ययन किया गया है। यह ज्ञात होता है कि भारत के शिल्पकार अपनी–अपनी कलात्मक परम्परा को बदलते वातावरण में भी कायम रखे हुए है क्योंकि समाज में उनके द्वारा बनाये गये मृण्कला खिलौनों और मूर्तिशिल्पों को लोगों के पर्व, त्योहारों और संस्कारों के लिए विशेष रूप से बनाते रहे हैं।

मृण्कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास को विभिन्न कालों में पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त खिलौनों एवं मूर्तिशिल्पों, ग्रन्थों के साक्ष्यों एवं विभिन्न क्षेत्रों में सृजन करने वाले कलाकारों शिल्पकारों के द्वारा परम्परागत रूप से बनाये जाने वाले मिट्टी के मूर्तिशिल्पों पर समाज के प्रभाव का सर्वेक्षण से यह आभास होता है कि भारतीय समाज में आज भी संस्कारगत गुण विद्यमान है और शिल्पकारों, कलाकारों तथा लोगों के बीच यह संस्कार एक सेतु के रूप में कार्य करता है।

मृण्कला की परम्परा एवं महत्व पर विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि एक शिल्पकार अन्तःप्रेरणा से कार्य करने वाला और पारम्परिक बन्धनों और विशेषताओं को स्वीकार करते हुए ऐसी वस्तु का निर्माण करता है जिसमें एक ऐसी अस्मिता की छाप होती है जिसे नाम की अथवा निजी शैली की आवश्यकता नहीं रहती है। भारत उन प्रजापतियों का देश है जो हजारों वर्श पुरानी परम्परा के अंश है। इन लोगों में अनेक ऐसे दर्जे के कलाकार मिलते हैं जिनके कौशल के सामने मूर्तिकारों को नतमस्तक होना पड़ता है यह भी हो सकता है कि भारत में औद्योगीकरण पारम्परिक शिल्पों जीवन पद्धतियों को नष्ट नहीं कर पाया है और भविष्य में भी न कर पाये। यह भी माना जा सकता है कि शहरों में आज प्रजापतियों के मूर्तिशिल्पों की मॉग घट गयी है परन्तु गॉवों में अभी वह जीवन–पद्धति का आवश्यक अंग है। यह भारतीय शिल्पियों को सौभाग्य है कि उनकी कला की प्रेरक एक प्राचीन परम्परा आज भी जीवित है प्रजापतियों द्वारा बनायी गयी मूर्तिशिल्पों का पूर्णत्व आभास होता है। इसका कारण यह है कि अपने माध्यम अर्थात मिट्टी से उनका अटूट सम्बन्ध है पारम्परिक आकारों, नमूनों और सजावटी काम पर उनका पूर्ण अधिकार होता है।

तकनीकी दृष्टि से देखे तो मूर्तियों और खिलौनों को कुम्हार ऑवा में पकाते हैं जिसमें जमीन पर गड्ढ़ा खोदकर उसमें मिट्टी के साथ राख को मिलाकर छिड़काव करते हैं फिर गाय के गोबर से बने कंड़े को बिछाकर उस पर खपरैल के टुकड़े रखकर उस पर खिलौनों और मूर्तियों को सजाते हैं। फिर कंड़ों से किनारे और ऊपर से ढ़कते जाते हैं। इसी प्रकार मूर्तियों और खिलौनों को रखते जाते हैं और कंड़ों से ढकते जाते हैं अन्त में पुआल को बिछाकर मिट्टी से लीपकर गोलाकर कर देते हैं नीचे के स्थान पर एक छोटा से छेद बना देते हैं जिसके द्वारा आग डाला जाता है। आग धीरे–धीरे जलता है जिससे सभी मूर्ति और खिलौने धीमी ऑच पर पकते हुए ऑच में पक जाते हैं। इसी प्रकार मिट्टी के बर्तनों को भी पकाया जाता है यह परम्परा बहुत प्राचीन है।[5]

मिट्टी के मूर्तियों एवं खिलौनों के लिए तैयार किये जाने वाले मिट्टी का विस्तार से ग्रन्थों में उल्लेख किया गया है और पक्व व अपक्व मूर्तियों एवं खिलौनो की परम्परा एवं उपयोगिता पर गहन विचार किया गया है।

मिट्टी के खिलौनों एवं मूर्तियों पर सामाजिक जनजीवन का परस्पर प्रभाव के विषय में यह कहा जा सकता है कि कोई भी कला समाज में ही जन्म लेती है और सामाजिक चेतना के कारण कला में विकास होता है कलाकार मूर्तिशिल्पी सभी सामाजिक व्यक्ति होते हैं और सामाजिक परिवेश और क्रियाकलापों के द्वारा ही वे प्रेरित होकर सृजन करते हैं। अपक्व मूर्तियों एवं खिलौनों को समाज के आस्था और विश्वास का सम्बल मिलता रहा है, क्योंकि समाज की मांग के अनुसार ही शिल्पकार इसका निर्माण करते हैं। लोक जनजीवन का प्रभाव खिलौनों और मूर्तिशिल्पों पर विभिन्न उत्सवों, तीज–त्योहारों में अनुष्ठान के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं जो सामाजिक है।

लोक परम्पराओं में मृण्कला का प्रचलन है क्योंकि मिट्टी की कला साधारण जन से निकली ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक परम्परा से दूसरी परम्परा तक निरन्तर प्रचलन में रही है। मिट्टी व्यंजना का सबसे प्राचीन वह असाधारण माध्यम है और लोक कलाकारों ने अपने हस्तलाघव द्वारा उसे अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने का साधन बनाया है। मिट्टी के माध्यम से कार्य करने वाले मूर्तिशिल्पी संकीर्ण मनोवृत्ति के नहीं रहे हैं, क्योंकि वे दूसरी मूर्तिशिल्पी से

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

सीखते रहते हैं। मिट्टी की सौन्दर्यपरकता उसे निरन्तरता और व्यापकता प्रदान करने का कारण रही है यह निरन्तरता मूर्तिशिल्पियों के आनुष्ठानिकता पर निर्भर करती है। प्रतिमा पूजा का हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण स्थान है जन साधारण में प्रतिमा का उपयोग तो होता ही है साथ ही योगी, ज्ञानी एवं ध्यानी भी ध्यान एवं मनन हेतु प्रतिमा का आधार लेते रहे हैं।[5]

यक्ष, किन्नर, गन्धर्व नाग, अप्सरा आदि व्यंतर देवताओं की पूजा का विधान लोक जीवन में रहा है। इन व्यंतर देवी–देवताओं को लोक जीवन में अर्द्धदेवों को महत्व प्राप्त रहा है। आज भी ग्राम देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। लोक परम्पराओं के प्रचलन और महत्व का गहन प्रभाव समाज में व्याप्त है।

मृण्कला के पक्व व अपक्व खिलौनों एवं मूर्तियों को वृहद रूप में हम आज भी दुर्गा, काली, गणेश, भगवान विश्वकर्मा आदि के पूजा के विधान और उनकी विसर्जन करने की परम्परा में प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में देख सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आलेख–बसंत निरगुणे : समष्टि–माटी की कला यात्रा, मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्, 2002.
2. इंदुमती : प्रतिमा विज्ञान, पृ0सं0–56.
3. डॉ0 विद्या बिन्दू सिंह : लोक पर्व और लोक कलाएं, पुस्तक– भारतीय लोक कलाओं के विविध आयाम, सम्पादक– अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' प्रकाशन–संस्कार भारतीय।
4. बसंत निरगुणे : मध्य प्रदेश शिल्प, मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्, प्रकाशन–भोपाल, 1993, पृ0सं0– 75–76
5. डॉ0 आलोक कुमार सिंह 'अप्रकाशित शोध', अपक्व मृण्कला पृ0सं0–11.
6. डॉ0 आलोक कुमार सिंह 'अप्रकाशित शोध', अपक्व मृण्कला पृ0सं0– 12–13.

*****